कविताञ्जलि

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182651
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 891.08 K 93 k   Accession No. G H 2608

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

कविताञ्जलि

प्राचीन तथा नवीन कवियों की कविताओं का संकलन

[प्री-यूनिवर्सिटी कोर्स के लिए]

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

मूल्य	:	एक रुपया
द्वितीय संस्करण	:	अप्रैल, १९५९
प्रकाशक	:	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक	:	युगान्तर प्रेस, दिल्ली

भूमिका

यह संकलन 'प्री-यूनिवर्सिटी कोर्स' कक्षा के लिए तैयार किया गया है। इसमें कवियों की रचनाओं में से पाँच सौ के लगभग पंक्तियाँ संगृहीत हैं। चयन में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि प्रत्येक कवि का प्रतिनिधित्व करने वाली कविता आ जाए। साथ ही विषयों और शैलियों की दृष्टि से भी इस संग्रह को वैविध्यपूर्ण बनाने की चेष्टा की गई है।

विद्यार्थियों की सुविधा के लिए पाठ के अन्त में नवीन कविताओं के कठिन शब्दों के अर्थ और प्राचीन कविताओं के पूरे अर्थ परिशिष्ट में दे दिये गये हैं।

हम उन सब सुकवियों के प्रति आभारी हैं, जिनकी रचनाओं के कारण यह प्रतिनिधि संग्रह बन सका।

आशा है कि छात्र इस काव्यरसपूर्ण संग्रह को पसन्द करेंगे।

क्रम

नवीन कवि

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	...	७
२. मैथिलीशरण गुप्त	...	११
३. सियारामशरण गुप्त	...	१७
४. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	...	१६
५. रामधारीसिंह 'दिनकर'	...	२३
६. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	...	२७
७. सुभद्राकुमारी चौहान	...	३१
८. सोहनलाल द्विवेदी	...	३५
९. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'	..	३६
१०. हरिवंशराय 'बच्चन'	...	४१
११. शम्भूनाथसिंह	...	४३
१२. सैयद मीरअली 'मीर'	..	४७
१३. नीरज	...	५१

प्राचीन कवि

१४. महात्मा कबीर	...	५७
१५. गोस्वामी तुलसीदास	...	६१
१६. सूरदास	...	६५
१७. रहीम	...	६७
१८. वृन्द		७१
प्राचीन कविताओं के अर्थ	...	७३

नवीन कवि

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

श्री 'हरिऔध' जी का जन्म सन् १८६५ में आज़मगढ़ (ज़िला निज़ामाबाद) में हुआ था। आपने काशी में शिक्षा प्राप्त की। अंग्रेज़ी, फारसी, संस्कृत, उर्दू, हिन्दी और बंगला का आपने पर्याप्त अध्ययन किया था। आपका व्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों पर समान अधिकार था। हिन्दी साहित्यकारों में आपका सुयश, कवि के रूप में—खड़ीबोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' के कारण—है। आपने उपन्यास, नाटक, निबन्ध भी लिखे हैं।

आपकी रचनाओं में, 'चुभते चौपदे', 'बोल-चाल', 'चोखे चौपदे' उर्दू शैली में लिखित हैं। अन्य रचनाएँ हैं: 'प्रिय-प्रवास' काव्य; 'रुक्मिणी-विजय' और 'प्रद्युम्न-विजय' व्यायोग नाटक; 'अधखिला फूल' उपन्यास; 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' निबन्ध; नवरसों पर 'रस-कलश' एक नवीन रचना। 'पद्य-प्रसून' और 'कल्पलता' स्फुट कविताओं के संग्रह।

फूल और काँटा

(१)

हैं जनम लेते जगह में एक ही,
एक ही पौधा उन्हें है पालता।
रात में उन पर चमकता चाँद भी,
एक ही सी चाँदनी है डालता॥

(२)

मेंह उन पर है बरसता एक-सा,
एक-सी उन पर हवाएँ है बही।
पर सदा ही यह दिखाता है समय,
ढंग उनके एक-से होते नहीं॥

(३)

छेदकर काँटा किसी की उँगलियाँ,
फाड़ देता है किसी का वर वसन।
और प्यारी तितलियों का पर कतर,
भौंर का है बेध देता श्याम तन॥

(४)

फूल लेकर तितलियों को गोद में,
भौंर को अपना अनूठा रस पिला।

निज सुगन्धी औ' निराले रंग से,
है सदा देती कली दिल को खिला ।।

(५)

खटकता है एक सबकी आँख में,
दूसरा है सोहता सुर-सीस पर ।
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे,
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर।।

कठिन शब्द

मेंह=बादल
सोहता=सज रहा
सीस=सिर

वर वसन=सुन्दर वस्त्र
सुर=देवता
निज=अपनी

मैथिलीशरण गुप्त

श्री गुप्त जी का जन्म सन् १८८६ में चिरगाँव (ज़िला झाँसी), उत्तरप्रदेश में हुआ। आपकी अधिकांश शिक्षा घर पर ही हुई। आप हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं। राजनीतिक जागरण के साथ ही आपकी कविता का विकास हुआ, इसलिए राष्ट्र-प्रेम की भावनाएँ आपकी कविताओं में कूट-कूटकर भरें हैं। आप उदार एवं सरलहृदय हैं। देशभक्ति, गांधीवाद और भारतीय संस्कृति की झलक आपकी रचनाओं में विशेषतया मिलती है।

गुप्त जी विशुद्ध खड़ीबोली के प्रथम कवि हैं। अधिकांश में प्रबन्ध-कवि रहकर भी गीतिकाव्य के युग में आपने गीति-रचना करने में भी सफलता प्राप्त की। आपकी साहित्यिक एवं देश-सेवा के सम्मानार्थ भारत के राष्ट्रपति ने आपको 'पद्म-विभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया है।

आपकी कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं—'भारत-भारती', 'जयद्रथ-वध', 'साकेत', 'यशोधरा', 'पंचवटी' 'जय भारत'।

माँ, कह एक कहानी

"माँ, कह एक कहानी।"
"बेटा, समझ लिया क्या तूने
मुझको अपनी नानी?"
"कहती है मुझसे यह चेटी,
तू मेरी नानी की बेटी!
कह माँ, कह, लेटी ही लेटी,
राजा था या रानी?
राजा था या रानी?
माँ, कह एक कहानी।"
"तू है हठी मानधन मेरे,
सुन उपवन में बड़े सबेरे,
तात भ्रमण करते थे तेरे,
जहाँ सुरभि मनमानी।"
"जहाँ सुरभि मनमानी?
हाँ, माँ, यही कहानी।"
"वर्ण वर्ण के फूल खिले थे,
झलमल कर हिम-बिन्दु झिले थे,
हलके झोंके हिले-मिले थे,

लहराता था पानी।"
"लहराता था पानी ?
हाँ, हाँ, यही कहानी।"

"गाते थे खग कल-कल स्वर से
सहसा एक हंस ऊपर से
गिरा, विद्ध होकर खर-शर से।

हुई पक्ष की हानी।"
"हुई पक्ष की हानी ?
करुणा-भरी कहानी।"

"चौंक उन्होंने उसे उठाया,
नया जन्म-सा उसने पाया।
इतने में आखेटक आया,

लक्ष्य-सिद्धि का मानी।"
"लक्ष्य-सिद्धि का मानी ?
कोमल-कठिन कहानी।"

"माँगा उसने आहत पक्षी
तेरे तात किन्तु थे रक्षी।
तब उसने, जो था खगभक्षी—

हठ करने की ठानी।"
"हठ करने की ठानी ?
अब बढ़ चली कहानी।"

"हुआ विवाद सदय-निर्दय में,
उभय आग्रही थे स्वविषय में,
गई बात तब न्यायालय में,

सुनी सभी ने जानी।"
"सुनी सभी ने जानी?
व्यापक हुई कहानी।"

"राहुल, तू निर्णय कर इसका—
न्याय पक्ष लेता है किसका?
कह दे निर्णय, जय हो जिसका।

सुन लूं तेरी बानी!"
"माँ, मेरी क्या बानी?
मैं सुन रहा कहानी।

कोई निरपराध को मारे,
तो क्यों अन्य उसे न उबारे?
रक्षक पर भक्षक को वारे

न्याय दया का दानी।"
"न्याय दया का दानी?
तूने गुनी कहानी।"

कठिन शब्द

तात=पिता

वर्ण=रंग

खग=पक्षी

स्वर=तीखा

आखेटक=शिकारी

उभय=दोनों

उपवन=बाग

सुरभि=सुगंध, खुशबू

हिम-बिन्दु=ओस की बूँदें

सहसा=अचानक

शर=बाण

आहत=घायल

सियारामशरण गुप्त

श्री सियारामशरण गुप्त का जन्म संवत् १९५२ में हुआ। आप हिन्दी में प्रतिनिधि कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई हैं। हिन्दी के अतिरिक्त आप अंग्रेज़ी, बंगला, गुजराती और मराठी भी जानते हैं। हिन्दी में आपने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि साहित्य के प्राय: सभी अंगों को पुष्ट किया है; किन्तु आपकी ख्याति कवि के रूप में ही है। 'मौर्य-विजय', 'दूर्वादल', 'आत्मोत्सर्ग', 'अनाथ', 'विषाद', 'आर्द्रा', 'पाथेय', 'मृण्मयी' आदि आपकी प्रमुख काव्य-रचनाएँ हैं। इनकी अभिव्यक्ति सुस्पष्ट तथा शब्द-योजना संयत और सरल रहती है। इनकी रचनाओं में गहन अनुभूति के दर्शन होते हैं। जैसे स्वभाव से अत्यन्त सरल हैं, वैसे ही ये सीधे-सादे, सरल विषयों पर कविता भी करते है। प्रस्तुत संग्रह की 'घट' कविता इसी बात की परिचायक है। कविता का विषय जितना सरल है, भाव उतने ही ग्राह्य हैं।

घट

कुटिल कंकड़ों की कर्कश रज, मल-मलकर सारे तन में,
किस निर्मम निर्दय ने मुझको बाँधा है इस बंधन में ?
फाँसी-सी है पड़ी गले में, नीचे गिरता जाता हूँ,
बार-बार इस अन्धकूप में, इधर-उधर टकराता हूँ।
ऊपर नीचे तम ही तम है, बन्धन है अवलम्ब यहाँ !
यह भी नहीं समझ में आता, गिरकर मैं जा रहा कहाँ ?
काँप रहा हूँ, भय के मारे हुआ जा रहा हूँ म्रियमाण,
ऐसे दुखमय जीवन से हा ! किस प्रकार पाऊँ मैं त्राण ?
सभी तरह हूँ विवश करूँ क्या, नहीं दीखता एक उपाय,
यह क्या ? —यह तो अगम नीर है, डूबा ! अब डूबा मैं हाय ?
भगवन् ! हाय बचा लो अब तो, तुम्हें पुकारूँ मैं जब तक,
हुआ तुरन्त निमग्न नीर में आर्तनाद करके तब तक।
अरे, कहाँ वह गई रिक्तता, भय का भी अब पता नहीं ?
गौरववान हुआ हूँ सहसा, बना रहूँ तो क्यों न यहीं ?
पर मैं ऊपर चढ़ा जा रहा हूँ उज्ज्वल जीवन लेकर;
तुम से उऋण नहीं हो सकता यह नवजीवन भी देकर।

कठिन शब्द

अवलम्ब = सहारा
तम = अंधेरा
त्राण = रक्षा
म्रियमाण = मरा हुआ-सा
रिक्तता = सूनापन
नीर = जल

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

श्री 'नवीन' जी का जन्म सन् १९०० में ग्वालियर रियासत में हुआ। उज्जैन तथा कानपुर में आपने शिक्षा पाई। आपके हृदय में देश-सेवा की उद्दाम अभिलाषा थी। स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आने से आपकी इच्छाओं को अभिव्यक्ति मिलने लगी। 'प्रताप' और 'प्रभा' नामक पत्रों का सम्पादन भी आप करते रहे हैं।

एक ओर आपने अपने जीवन को राष्ट्रीय आन्दोलन में जुटा दिया, दूसरी ओर साहित्य के माध्यम से भारत-भू के जन-जन के हृदय में देश-प्रेम की ज्योति जगाने के लिए कविताएँ लिखीं। आप प्रगतिवाद के प्रबल समर्थक हैं। परिवर्तन आपको प्रिय है।

'कुंकम', 'क्वासि' आदि आपकी कई रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं जिनमें भावपक्ष और कला-पक्ष—दोनों सबल हैं।

संक्षेप में आप सफल राजनीतिज्ञ, अच्छे देश-सेवक, सजग कलाकार हैं। कई नये लेखकों को प्रेरणा देकर आपने प्रतिभाओं को प्रकाश में लाने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

हिन्दुस्थान हमारा है !

कोटि-कोटि कंठों से निकली, आज यही स्वर-धारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !

जिस दिन सबसे पहले जागे नव सिरजन के स्वप्न घने,
जिस दिन देश-काल के दो-दो विस्तृत विमल वितान तने,
जिस दिन नभ में तारे छिटके, जिस दिन सूरज-चाँद बने,
तब से है यह देश हमारा यह अभिमान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है ।

जिस क्षण से जड़ रज-कण गतिमय होकर जंगम कहलाए,
जब कि हँसी प्रथम ऊषा वह जब कि कमल-दल मुसकाए,
जब मिट्टी में चेतन चमका प्राणों के झोंके आए,
है तब से यह देश हमारा यह मन-प्राण हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !

यहाँ प्रथम मानव ने खोले निंदियारे लोचन अपने,
इसी नभ तले उसने देखे शत-शत नवल सृजन-सपने,
यहाँ उठे 'स्वाहा' के स्वर औ' यहाँ 'स्वधा' के मन्त्र बने,
ऐसा प्यारा देश पुरातन ज्ञान-निधान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !

विन्ध्य , सतपुड़ा, नागा, खसिया ये दो औघट-घाट महा,
भारत के पूरब-पश्चिम के, ये दो भीम कपाट महा,

तुंग शिखर चिर-अटल-हिमालय, है पर्वत-सम्राट् यहां,
यह गिरिवर बन गया युगों से विजय-निशान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है यह हिन्दुस्थान हमारा है !

क्या गणना है कितनी लम्बी हम सबकी इतिहास-लड़ी,
हमें गर्व है यह कि बहुत ही गहरे अपनी नींव पड़ी,
हमने बहुत बार सिरजी हैं कई क्रान्तियाँ बड़ी-बड़ी,
इतिहासों ने किया सदा ही अतिशय मान हमारा है।
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !

है आसन्नभूत अति उज्ज्वल, है अतीत गौरवशाली,
औ' छिटकी है वर्तमान पर बलि के शोणित की लाली,
नव ऊषा-सी विहँस रही है विजय हमारी मतवाली,
हम मानव को मुक्त करेंगे यही विधान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है

कठिन शब्द

कोटि-कोटि = करोड़ों
कपाट = दरवाज़ा
जंगम = चेतन, चलने वाला
शोणित = खून
लोचन = आँखें
सिरजन = रचना
पुरातन = पुराना
शत-शत = सैकड़ों

रामधारीसिंह 'दिनकर'

श्री दिनकर जी का जन्म सन् १९०८ में सिमरिया ग्राम, ज़िला मुंगेर (बिहार) में हुआ। आपने पटना विश्वविद्यालय से बी० ए० परीक्षा पास की। आज हिन्दी के प्रतिनिधि आधुनिक कवियों में आपका अपना विशिष्ट स्थान है। कविता में आपकी देश-भक्ति, राष्ट्रीयता, सरलता, विचारशीलता के दर्शन होते हैं। आपकी भाषा में ओज, गांभीर्य रहता है। गद्य तथा पद्य—दोनों पर आपका समान रूप से अधिकार है। 'कुरुक्षेत्र' आपका ओजपूर्ण काव्य है। गद्य में 'संस्कृति के चार अध्याय' आपका महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

आप प्रगतिवाद के प्रबल समर्थक रहे हैं। बाद में आप रूढ़ि-प्रगतिवाद के प्रति असंतुष्ट हो गये। आपकी रचनाओं में गहन अनुभूति के दर्शन होते हैं। इतिहास के दर्द को जानने में वे परम दक्ष हैं। 'इतिहास के गीत' नामक कविता उनकी गहरी अनुभूति की परिचायक है।

इतिहास के गीत

१

कल्पने ! जीवन के उस पार ।
चमक उठा आँखों के आगे एक नया संसार ।
प्राणों की जब सुनी प्राण ने करुणा-सिक्त पुकार,
चू करके गिर गई मुष्टि से स्वयं त्रस्त तलवार ।
कल्पने ! जीवन के उस पार ।

२

दया की हुई जयश्री चेरी ।
सकल विश्व में नृप अशोक की बजी धर्म की भेरी ।
मैत्री ने मन पर मनुष्य के नई तूलिका फेरी ।
जीवन के पावन स्वरूप की करुणा हुई चितेरी ।
दया की हुई जयश्री चेरी ।

३

कल्पने ! यह सन्देश हमारा ।
बसता कहीं परिधि से आगे जीवन का ध्रुव तारा ।
पा न सके हम उसे सतह के ऊपर कोलाहल में,
मिला हमें वह जब हम डूबे अपने हृदय-अतल में ।

चन्द्रगुप्त-चाणक्य समर्थक-रक्षक रहे स्वजन के,
हीन बन्ध को तोड़ हो गए पर, अशोक त्रिभुवन के।
दो कूलों के बीच सिमिटकर सरिताएँ बहती हैं।
सागर कहते उसे दीखता जिसका नहीं किनारा।
कल्पने ! यह सन्देश हमारा।

कठिन शब्द

मुष्टि = मुट्ठी	तूलिका = कूँची
पावन = पवित्र	परिधि = घेरा
कूल = किनारा	कोलाहल = शोर

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

श्री 'निराला' जी का जन्म सन् १८९६ में बंगाल के महिषादल राज्य में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा बंगला में हुई। तत्पश्चात् आपने हिन्दी का अध्ययन किया। कविता करने का शौक बचपन से ही रहा है। आपके साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ 'समन्वय' और 'मतवाला' के सम्पादन से प्रारम्भ हुआ।

निराला जी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी लिखते हैं। हिन्दी कविता में अमात्रिक छन्दों के प्रवर्तन का श्रेय आपको ही प्राप्त है। निराला जी एकात्मवाद के समर्थक रहस्य-वादी कवि हैं। आपकी विचारधारा पर परमहंस राम-कृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द जी का प्रभाव है।

प्रमुख रचनाएँ हैं : 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका' (कविता-संग्रह)। 'तुलसीदास' (खण्डकाव्य)। 'अप्सरा', 'गीतिका', 'निरुपमा', 'प्रभावती' (उपन्यास)। 'लिली', 'सखी', 'सुकुल की बीबी' (कहानी-संग्रह)।

तुम और मैं

तुम तुंग-हिमालय-शृंग
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता
तुम विमल-हृदय-उच्छ्वास
और मैं कान्त-कामिनी कविता;
तुम प्रेम और मैं शान्ति,
तुम सुरापान-घन अन्धकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति ।
तुम दिनकर के खर किरण-जाल,
मैं सरसिज की मुसकान,
तुम वर्षों के बीते वियोग,
मैं हूँ पिछली पहचान;
तुम योग और मैं सिद्धि,
तुम हो रागानुग निश्छल तप
मैं शुचिता सरल समृद्धि ।
तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनोरंजिनी भाषा;
तुम नन्दन-वन-घन-विटप
और मैं सुख-शीतल-तल शाखा;
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म,

मैं मनोमोहिनी माया।
तुम प्रेममयी के कण्ठहार,
मैं वेणी काल-नागिनी,
तुम कर-पल्लव-झंकृत सितार
मैं व्याकुल विरह-रागिनी।
तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु,
तुम हो राधा के मन-मोहन,
मैं उन अधरों की वेणु।
तुम पथिक दूर के श्रान्त,
और मैं बाट-जोहती आशा,
तुम भव-सागर दुस्तार,
पार जाने की मैं अभिलाषा।
तुम नभ हो, मैं नीलिमा,
तुम शरत-काल के बाल-इन्दु,
मैं हूँ निशीथ मधुरिमा।
तुम गन्ध-कुसुम कोमल पराग
मैं मृदुगति मलय-समीर,
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष,
मैं प्रकृति प्रेम-जंजीर।
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति,
तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र,
मैं सीता अचला भक्ति।
तुम आशा के मधुमास
और मैं पिक-कल-कूजन-तान,
तुम मदन-पंच-शर-हस्त

और मैं हूँ मुग्धा अनजान ।
तुम अम्बर, मैं दिग्वसना,
तुम चित्रकार, घन-पटल-श्याम,
मैं तड़ित्तूलिका रचना ।
तुम-रण-ताण्डव-उन्माद-नृत्य,
मैं मुखर मधुर नूपुर ध्वनि,
तुम नाद-वेद-ओङ्कार-सार
मैं कवि-शृंगार-शिरोमणि ।
तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति,
तुम कुन्द-इन्दु-अरविन्द शुभ्र
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति ।

कठिन शब्द

तुंग=ऊँचे	सरिता=नदी
सरसिज=कमल	मृदु=कोमल
विटप=वृक्ष	रेणु=धूलि
वेणु=बाँसुरी	नभ=आकाश
निशीथ=रात	समीर=वायु
इंदु=चन्द्रमा	पिक=कोयल

सुभद्राकुमारी चौहान

श्रीमती सुभद्राकुमारी जी का जन्म सन् १९०४ में प्रयाग में हुआ । आपका विवाह खण्डवा के प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्ता ठा० लक्ष्मणसिंह चौहान के साथ हुआ था। कवयित्री के रूप में, आपका हिन्दी-साहित्य में बहुत ऊँचा स्थान है। आपकी रचनाएँ सरल, ओजस्विनी और प्रभावोत्पादक हैं। स्त्रीसुलभ कोमल भावनाओं के साथ-साथ आपकी रचनाएँ देश-प्रेम और वीरता से भी ओत-प्रोत हैं। आप मध्यप्रदेश असेम्बली की सदस्या भी थीं। एक मोटर-दुर्घटना में आपकी मृत्यु हो गई।

आपकी प्रमुख रचनाएं हैं: 'मुकुल' (कवितासंग्रह) और 'बिखरे मोती' (कहानी-संग्रह)। ये दोनों रचनाएँ सेक्सरिया पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं।

मेरा जीवन

मैंने हँसना सीखा है
मैं नहीं जानती रोना ;
बरसा करता पल-पल पर
मेरे जीवन में सोना ।

मैं अब तक जान न पाई
कैसी होती है पीड़ा ;
हँस-हँस जीवन में कैसे
करती है चिन्ता क्रीड़ा ।

जग है असार सुनती हूँ,
मुझको सुख-सार दिखाता;
मेरी आँखों के आगे
सुख का सागर लहराता ।

कहते हैं होती जाती
खाली जीवन की प्याली;
पर मैं उसमें पाती हूँ
प्रतिपल मदिरा मतवाली ।

उत्साह, उमंग निरन्तर
रहते मेरे जीवन में;
उल्लास विजय का हँसता
मेरे मतवाले मन में।

आशा आलोकित करती
मेरे जीवन को प्रतिक्षण
है स्वर्ण-सूत्र से वलयित
मेरी असफलता के घन।

सुख-भरे सुनहले बादल
रहते हैं मुझको घेरे;
विश्वास, प्रेम, साहस हैं
जीवन के साथी मेरे।

कठिन शब्द

पीड़ा=दर्द
क्रीड़ा=खेल
प्रतिपल=हर घड़ी
निरन्तर=लगातार
मदिरा=शराब
वलयित=घिरा हुआ

सोहनलाल द्विवेदी

श्री सोहनलाल द्विवेदी अपने देशभक्तिपूर्ण काव्य के लिए प्रसिद्ध हैं। साथ ही उनका काव्य गांधीवाद से भी प्रभावित है। आपने बालकों के लिए भी कविता की कई पुस्तकें लिखी हैं। आप 'अधिकार' नामक पत्र के वर्षों तक सम्पादक रहे हैं। यद्यपि आपका यश कवि के रूप में ही है पर आपने कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं।

प्रसिद्ध रचनाएँ हैं: 'भैरवी', 'पूजागीत', 'प्रभाती', 'सेवाग्राम', 'कुणाल', 'वासवदत्ता' आदि। बालोपयोगी रचनाओं में 'दूध-बताशा', 'बाँसुरी', 'झरना' और 'बिगुल' के नाम उल्लेखनीय हैं।

स्वागत तुलसी के आँगन में

स्वागत तुलसी के आँगन में, स्वागत कबीर के प्रांगण में
स्वागत शंकर की काशी में, विज्ञान-ज्ञान के उपवन में !

थे यहीं बुद्ध शङ्कर आये, अपनी-अपनी विभूति लाये,
उनकी सुधि बिखरी कण-कण में ! स्वागत तुलसी के आँगन में,

वह भी था कभी समय पावन, काशी का गृह-गृह ज्ञान सदन,
वैभव के उस खंडहर वन में। स्वागत तुलसी के आँगन में !

वह भी थीं काशी की घड़ियाँ, थीं गृह-गृह में माणिक मणियाँ,
हरिचन्द धनी उतरे प्रण में। स्वागत तुलसी के आँगन में !

गंगा के तट पर खड़ी-खड़ी, काशी सुधि करती घड़ी-घड़ी,
वे स्वर्ग-दिवस किस रजकण में ? स्वागत तुलसी के आँगन में !

था भारतेन्दु का उदय यहीं, थीं जिसकी किरणें अमृतमयी,
हिन्दी-प्रभात के प्रांगण में। स्वागत तुलसी के आँगन में !

पा शक्ति विश्वविद्यालय की, काशी प्राचीन उठी है जो,
ऋषियों के पुण्य तपोवन में। स्वागत तुलसी के आँगन में !

दर्शन पुराण की ग्रन्थि यहीं, ऋषि सुलभाते थे बैठ कहीं,
इस उजड़ हुए तपोवन में। स्वागत तुलसी के आँगन में।

हे आगत ! स्वागत है आओ, इस तीर्थ-भूमि में सुख पाओ।
नव जीवन हो तन में, मन में। स्वागत तुलसी के आँगन में !

भारत-जन-मानस-विहारिणी, है यहीं नागरी प्रचारिणी,
शुभ भारत-कला-निकेतन में । स्वागत तुलसी के आँगन में !

कुसुमित हो आज मधुर आशा, निज हिन्दी बने राष्ट्रभाषा ।
गूँजे स्वदेश के जन-जन में । स्वागत तुलसी के आँगन में !

कठिन शब्द

विभूति=विशेष प्रकार की शक्ति	सदन=घर
ग्रन्थि=गुत्थी	निकेतन=रहने का स्थान
कुसुमित=फूली हुई	माणिक=गुलाबी या लाल रंग का एक रत्न

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

श्री 'अज्ञेय' जी का जन्म सन् १९१६ में हुआ। क्रांतिकारी आन्दोलन में भाग लेने के कारण आप एम. ए. का अध्ययन पूरा न कर सके। साहित्य, चित्रकला और मूर्तिकला—तीनों की ओर आपकी प्रवृत्ति है। आप असाधारण प्रतिभा के चिन्तनशील कलाकार हैं।

आपने 'सैनिक', 'विशाल भारत' तथा 'प्रतीक' इन पत्रों का सफल सम्पादन भी किया है। कुछ काल तक आप आकाशवाणी में भी कार्य करते रहे।

कविता और कहानी के अतिरिक्त आपने उपन्यास, नाटक, यात्रा-संस्मरण एवं आलोचना-सम्बन्धी ग्रंथ भी लिखे हैं। 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास के प्रकाशित होने पर तो हिन्दी-जगत् में आपकी बहुत चर्चा हुई थी। आपके कुछ कविता-संग्रहों के नाम ये हैं—'चिन्ता', 'भग्न-दूत', 'हरी घास पर क्षणभर,' 'इत्यलम्'।

आपकी कविताओं में छन्द का बन्धन नहीं है। कविता के पद-पद में आपकी बौद्धिकता टपकती है। जिस विषय पर आप कविता लिखते हैं शब्दों में उसका चित्र मूर्त हो उठता है।

हमारा देश

इन्हीं तृण-फूस छप्पर से
ढके ढुलमुल गँवारू
झोंपड़ों में ही हमारा देश
बसता है ।
इन्हीं के ढोल-मादल-बाँसुरी के
उमगते सुर में
हमारी साधना का रस
बरसता है ।
इन्हीं के मर्म को अनजान
शहरों की ढँकी लोलुप विषैली
वासना का साँप
डँसता है ।
इन्हीं में लहरती अल्हड़
अयानी संस्कृति की दुर्दशा पर
सभ्यता का भूत
हँसता है ।

कठिन शब्द

तृण = तिनका   अयानी = अजान

हरिवंशराय 'बच्चन'

'बच्चन' जी का जन्म सन् १९०७ में इलाहाबाद में हुआ। कविता की ओर आपकी बाल्यकाल से ही रुचि थी। एम० ए० का छात्र रहते हुए आपने उमरखैयाम की रुबाइयों का अनुवाद किया जिसको हिन्दी में पर्याप्त रुचि से पढ़ा गया।

आजकल आप हिन्दी में अपनी शैली के अकेले कवि माने जाते हैं। बच्चन जी ने अपनी कविता में जीवन-संघर्ष से ऊबे हुओं की निराशा, पराजय, असन्तोष को बड़ी सादगी से प्रकट किया है। 'मधुशाला' लिखकर आपने बड़ी ख्याति पाई है। आपकी कविताओं की भाषा, शैली और प्रवाह देखने योग्य हैं। वे प्रेम के कवि हैं।

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !
हो जाय न पथ में रात कहीं ।
मंज़िल भी तो है दूर नहीं,
यह सोच थका दिन का पन्थी भी जल्दी-जल्दी चलता है ।

दिन जल्दी जल्दी ढलता है !
बच्चे प्रत्याशा में होंगे,
नीड़ों में झांक रहे होंगे :
यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है !

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है !
मुझसे मिलने को कौन विकल ?
मैं होऊँ किसके हित चंचल !
यह प्रश्न शिथिल करता पद को भरता उर में विह्वलता है ।

कठिन शब्द

प्रत्याशा = आशा   **नीड़** = घोंसला
विकल = बेचैन   **उर** = दिल

शम्भूनाथसिंह

श्री शम्भूनाथसिंह नई पीढ़ी के गीतकारों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं।

उनकी एक विशेषता यह है कि वे किसी भी वाद से बन्धे हुए नहीं हैं।

उन्होंने अपने गीतों में प्रायः मुक्तक छन्द का प्रयोग किया है। उनकी व्यंग्य नाटिकाएँ भी सुन्दर बन पड़ी हैं।

कवि के साथ-साथ वे अच्छे कहानीकार भी हैं। 'रातरानी' और 'विद्रोही' नामक उनके दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

'रूप-रश्मि', 'छायालोक', 'उदयाचल', 'दिवालोक' आपकी कविता-पुस्तकें हैं।

मेरा गांव

धन्य मेरा गाँव,
मेरा गाँव है यह ।
मैं जहाँ पैदा हुआ
खेला बढ़ा जिसकी धरा पर
पी नयन से अमर छवि जिसकी
न मैं हो तृप्त पाया;
खेत, बाग, नदी, तलैया, ताल, ऊपर,
पोखरा, गड़हे, कुएँ
हैं एक-एक अनेक स्मृतियाँ ले पड़े ।
यह गाँव का बाज़ार, यह है मदरसा
यह सामने का वही बरगद वृद्ध
यह पीपल, कुआँ वह स्कूल का
जो स्कूल की कतवार से अब भर चुका है
पर जगत उसकी अभी स्थिर है
कि जिस पर बैठ पण्डित जी
नहाते और पूजा-पाठ करते थे,
उसी पर आज बन्दर खेलते हैं बैठकर,
बाज़ार के दिन डाकमुंशी भी
उसी पर बैठकर हैं बाँटते
अखबार, चिट्ठी या 'मनी आडर' ।

वहीं बाज़ार की उस छोर पर
है एक वह खंडहर,
कभी जो पुस्तकालय का भवन था।
और ये पगडंडियाँ परिचिता मेरी,
यह सड़क, वह पुल कि जिस पर
बैठ कितनी बार थीं तुकबन्दियाँ कीं
मधुर सपनों से रँगा संसार को
मृदु कल्पना के पंख पर चढ़
विश्व-भर में घूम आया।

*　　*　　*

घूमकर दुनिया बहुत कुछ
आज इनके बीच मैं फिर आ गया हूँ।
गाँव मेरा है वही
फिर भी न जाने क्यों न अपना लग रहा है।
हैं बदल कितने गये ये आदमी
किसने बदलने के लिए
मजबूर इनको कर दिया है ?

कठिन शब्द

धरा=भूमि　　बरगद=वड़ का वृक्ष
कतवार=कूड़ा-करकट　　जगत=कुएँ के ऊपर का हिस्सा

सैयद मीरअली 'मीर'

सैयद मीरअली 'मीर' रहीम और रसखान की परम्परा के मुस्लिम कवि हैं, जिन्होंने हिन्दी और उर्दू के आपसी पर्याप्त विरोध के बावजूद अपनी कविता के लिए हिन्दी को ही माध्यम बनाया।

उनका नीतिपरक काव्य बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। उसमें सूत्र की संक्षिप्तता और सूक्ति की सी मिठास है।

उन्होंने देवरी में एक कवि-समाज की स्थापना करके कितने ही नवयुवकों को काव्य-रचना की प्रेरणा दी और हिन्दी के प्रचार-प्रसार में योग दिया।

उनके मन और मस्तिष्क को धर्मान्धता छू तक नहीं सकी; उनकी 'दशहरा' कविता इस बात का प्रमाण है।

दशहरा

आ गया प्यारा दशहरा, छा गया उत्साह, बल ।
मातृ-पूजा, शक्ति-पूजा, वीर-पूजा है विमल ।।

हिन्द में यह हिन्दुओं का विजय-उत्सव है ललाम ।
शरद् की इस सुऋतु में है खड्ग-पूजा धाम-धाम ।।

भरने लगे बाज़ार हैं, खुलने लगे व्यापार-द्वार ।
सजने लगे सेना-नृपति, बजने लगे बाजे अपार ।।

यह दशहरा क्षत्रियों का प्राण, जीवन-पर्व है ।
हिन्द के इतिहास में इस पर्व का अति गर्व है ।।

वीर पुरुषों को यही संजीवनी का काम दे ।
जीत दे, फिर कीर्ति दे, फिर मान दे, धन-धाम दे ।।

थी विजयदशमी यही जब राम ने दल साज कर ।
गिरि प्रवर्षण से चढ़ाई की थी लंका-राज पर ।।

मार रावण को वहाँ, उद्धार सीता का किया ।
और लंका का विभीषण को तिलक था दे दिया ।।

और तब से इस दशहरे का बड़ा सम्मान है ।
मातृ-गुण का यह प्रवर्तक, क्षत्रियों का प्राण है ।।

कठिन शब्द

विमल=शुद्ध	**खड्ग**=तलवार
धाम-धाम=घर-घर	**पर्व**=त्योहार, मेला
गर्व=अभिमान	**गिरि**=पर्वत, पहाड़
प्रवर्तक=आरम्भ करने वाला	**नृपति**=राजा

नीरज

श्री नीरज हिन्दी-संसार के सुपरिचित कवि हैं। नई पीढ़ी के कवियों में वे सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। नई पीढ़ी के कवियों पर उनका प्रभाव भी स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। उन्होंने थोड़े ही समय में अखिल भारतीय ख्याति एवं लोकप्रियता प्राप्त कर ली है।

नीरज की काव्य-कला में तो अपनी विशेषता है ही, किन्तु उनका कविता पढ़ने का ढंग इतना मधुर और प्रभावोत्पादक है कि वे घंटों तक श्रोताओं को मंत्रमुग्ध बनाये रखते हैं।

'दर्द दिया है', 'विभावरी', 'बादर बरस गयो', 'प्राणगीत' और 'मृत्युगीत' आदि आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

मस्तक पर आकाश उठाये......

मस्तक पर आकाश उठाये, धरती बाँधे पाँवों से !
तुम निकलो जिन गाँवों से, सूरज निकले उन गाँवों से !!

चन्दन वाली साँस तुम्हारी, कुन्दन वाली काया है,
बादल वाली धूप उजाली, पीपल वाली छाया है,
सावन-नयना, मधुऋतु बैना, भादों-कुन्तलकेशा तुम,
सुबह-दुपहरी, शाम-सुनहरी सभी तुम्हारी माया है,
उजड़ी रातों वाला काजल, बिछुड़े नयनों वाला जल,
सुनो तुम्हीं को बुला रहे सब उन अजनबी चिताओं से
तुम निकलो जिन गाँवों से, सूरज निकले उन गाँवों से!!

पड़ें तुम्हारे पाँव जहाँ हो तीरथ वहाँ सबेरे का,
खुले तुम्हारा द्वार जिस समय, घूँघट खुले उजेरे का,
छू लो तुम जो दीप सितारा बन जाये जग का प्यारा,
पूनम का दर्पन हो जाये काला देश अँधेरे का,
किरनों की करधनी पहिन धरती सोलह सिंगार करे,
तुम जब अपनी धूप उड़ाओ, उड़ती हुई हवाओं से !
तुम निकलो जिन गाँवों से, सूरज निकले उन गाँवों से !!

तुम जब दो आवाज़, पहाड़ों की बोली मिट्टी बोले,
तुम जब छेड़ो तान, चाँदनी घट-घट में चन्दा घोले,

तुम जब हो नाराज़, ध्वस्त हो जाये रूढ़ि, पुरातनता,
तुम जब हँस दो प्राण ! धरा के लिए स्वर्ग का मन डोले,
बजे तुम्हारी पायल जिस दम सूने में, वीराने में।
हँसती हुई बहारें बरसें रोती हुई घटाओं से।
तुम निकलो जिन गाँवों से सूरज निकले उन गाँवों से !!

तुम उनका श्रृंगार करो जिनका पतझारों में घर है,
तुम उनका जयकार बनो जिनका तलवारों पर सर है,
तुम उनको दो मुकुट धरा की धड़कन हैं जिनकी साँसें,
तुम उन पर जलधार झरो, जिनका अंगारों का स्वर है,
जिनका रक्त सिंदूर सुबह का, जिनका स्वेद सूर्य जग का,
उनकी कीर्ति-पताका बन तुम फहरो सकल दिशाओं से,
तुम निकलो जिन गाँवों से, सूरज निकले उन गाँवों से !!

नयन तुम्हारे दीप बनें जब पूजा हो जग में श्रम की,
शीश तुम्हारा सीढ़ी हो नव जनयुग के जन-संगम की,
श्वास तुम्हारी कहे कहानी उन सब मिटने वालों की,
जिनकी अर्थी देख न पाई सेज किसी भी शबनम की,
सब से पहले रक्त तुम्हारा रवि के भाल करे टीका,
जिस दिन सुर्ख सबेरा बाहर निकले सर्द गुफाओं से !
तुम निकलो जिन गाँवों से, सूरज निकले उन गाँवों से !!

कठिन शब्द

कुन्दन=शुद्ध सोना
ध्वस्त=नष्ट
स्वेद=पसीना
शबनम=ओस
करधनी=एक गहना जो कमर में पहना जाता है
पतझारों=पतझड़

प्राचीन कवि

महात्मा कबीर

महात्मा कबीर का जन्म-वृत्तान्त अधिकतर दन्त-कथाओं पर आधारित है। कहा जाता है कि ये विधवा ब्राह्मणी से सन् १३१८ में उत्पन्न हुए और समाज के भय से लहरतारा तालाब (काशी) में फेंक दिये गए। जुलाहा जाति के नीरू और नीमा नामक पति-पत्नी ने इन्हें वहाँ से उठाकर पाला पोसा। बचपन से ही इनकी धर्म में प्रवृत्ति थी। इन्होंने रामानन्द जी से गुरु-दीक्षा ली और अपने उपदेशों से हिन्दू-मुस्लिम जनता को एकता का पाठ पढ़ाया। ये पक्के सुधारक थे और आडम्बर के कट्टर विरोधी थे। आपने अपनी कविता में जनसाधारण के लिए सरल भाषा का प्रयोग किया। आपके काव्य की एक बड़ी विशेषता यह है कि वह साधारण पढ़े-लिखों और विद्वानों को समान रूप से आकर्षित करता है। आपके सबद, साखियाँ और दोहे 'कबीर बीजक' नामक ग्रन्थ में संगृहीत हैं।

दोहे

तेरा साँई तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर फिर ढूंढ़े बास ।। १ ।।

गुरु गोबिंद दोऊ खरे काके लागूँ पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दिया बताय ।। २ ।।

जब मैं था तो गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं ।
प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं ।। ३ ।।

साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय ।। ४ ।।

माटी कहै कुम्हार से, तू क्या रूँदै मोय ।
इक दिन ऐसो होयगो मैं रूँदूँगी तोय ।। ५ ।।

माली आवत देखि के कलियाँ करत पुकार ।
फूली फूली चुन लई कालिह हमारी बार ।। ६ ।।

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप ।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ।। ७ ।।

साईं इतना दीजिए, जामें कुटुंब समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ।। ८ ।।

पानी बाढ़े नाव में, घर में बाढ़े दाम ।
दोनों हाथ उलीचिये, यहि सज्जन को काम ।। ९ ।।

रूखा सूखा खायके, ठंडा पानी पीव।
देख बिरानी चूपड़ी, मत ललचावे जीव ॥ १० ॥

जाको राखै साइयाँ, मारि न सक्कै कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥ ११ ॥

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥ १२ ॥

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझ-सा बुरा न कोय ॥ १३ ॥

कामी, क्रोधी, लालची, इनमें भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥ १४ ॥

दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, (तो) दुख काहे को होय ॥ १५ ॥

गोस्वामी तुलसीदास

श्री तुलसीदास जी का जन्म सन् १५३२ में, राजापुर ग्राम (जिला बाँदा) में हुआ। आप माता-पिता के निधन के कारण बाल्यकाल से ही आश्रयहीन थे। आप बाबा नरहरिदास जी के शिष्य थे। गृहस्थाश्रमका त्याग करके आप काशी में रहने लगे। आप अधिकतर काशी में ही रहे। इन्होंने वहीं पर 'रामचरितमानस' आदि ग्रन्थों की रचना की। आपकी भाषा में अवधी, ब्रज और बुन्देलखण्डी का पुट है। आपका स्थान रामोपासक भक्तों में प्रमुख है। आपकी रचनाओं में : 'दोहावली', 'कवितावली', 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका' आदि प्रमुख हैं। मर्यादापुरुषोत्तम राम के पावन चरित्र को हिन्दू जनता के सामने रखकर, गोस्वामी जी ने उसे सदा-सदा के लिए एक ऐसा सबल आधार प्रदान किया है कि वह सदा उनकी आभारी रहेगी।

दोहे

तुलसी संत सुअम्बु-तरु, फूलि फलहिं पर-हेत ।
इतते ये पाहन हनत, उ त फल देत ॥ १ ॥

मुखिया मुखसों चाहिए, खान पान को एक ।
पालै पोसै सकल अँग, तुलसी सहित विवेक ॥ २ ॥

बिना तेज के पुरुष की, अवशि अवज्ञा होय ।
आगि बुझे ज्यों राख को आप छुवै सब कोय ॥ ३ ॥

गो-धन गज-धन बाजि-धन, और रतन-धन खान ।
जब आ संतोष-धन, सब धन धूरि समान ॥ ४ ॥

काम क्रोध मद लोभ की, जौ लौं मन में खान ।
तौ लौं पण्डित मूरखौ, तुलसी एक समान ॥ ५ ॥

बिन बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिन द्रवहिं न राम ।
राम-कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह विश्राम ॥ ६ ॥

तुलसी तरु फूलत फलत, जेहि विधि कालहि पाय ।
तैसे ही गुन दोष-गत, प्रगटत समय सुभाय ॥ ७ ॥

आवत ही हरषै नहीं, नैनन नहीं सनेह ।
तुलसी तहाँ न जाइए, कंचन बरसै मेह ॥ ८ ॥

तुलसी काया खेत है, मनसा भयौ किसान ।
पाप पुण्य दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै किसान ।। ९ ।।

जग ते रह छत्तीस ह्वै, राम चरन छः तीन ।
तुलसी देखु विचार हिय, है यह मतौ प्रबीन ।। १० ।।

तुलसी साथी विपति के, विद्या, विनय, विवेक ।
साहस, सुकृत, सुसत्य-व्रत, राम भरोसो एक ।। ११ ।।

जड़, चेतन, गुण-दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार ।
संत-हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ।। १२ ।।

राम नाम अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस ।
बरषत बारिद बूंद गहि, चाहत चढ़न अकास ।। १३ ।।

तुलसी जस भवितव्यता, तैसी मिलै सहाय ।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय ।। १४ ।।

कल्प-बिरिछ को चित्र लिखि, कीन्हे विनय हज़ार ।
वित्त न पावइ ताहि सों, तुलसी देखु विचार ।। १५ ।।

सूरदास

श्री सूरदास का जन्म संवत् १५४० के लगभग मथुरा और आगरे के बीच रुनकता गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम हरिचन्द था। कुछ लोग इन्हें जन्मान्ध और कुछ बाद में अन्धा हुआ मानते हैं। ये बहुत दिनों तक निराश्रय फिरते रहे। बाद में कृष्ण-भक्ति की ओर झुके और प्रमुख भक्त गिने जाने लगे। कहा जाता है कि सूर ने सवा लाख पदों की रचना की थी। किन्तु इस समय तक इनके केवल छः हज़ार पद मिलते हैं। ये पद 'सूरसागर' में संगृहीत हैं। बाल-लीलाओं का जैसा वर्णन सूरदास जी कर गए हैं, वैसा किसी दूसरे ने नहीं किया। इनके भक्ति के पद भी बहुत अनूठे बन पड़े हैं। अष्टछाप के कवियों में सूरदास जी का स्थान अग्रणी है।

पद

१

चरण कमल बन्दौं हरिराई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ बरसाई ।।
बहिरौ सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई ।
'सूरदास' स्वामी करुणामय बार-बार बन्दौं तेहि पाई ।।

२

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ।
कितिक बार मोहिं दूध पिवत भई यह अजहूँ है छोटी ।।
तू जो कहति बल की बैनी ज्यों ह्वै है लाम्बी मोटी ।
काढ़त गुहत न्हावत ओंछत, नागिन सी भुंइ लोटी ।।
काचो दूध पिवावति पचि पचि देत न माखन रोटी ।
सूरस्याम चिरजिव दोउ भैया, हरि हलधर की जोटी ।।

३

सोभित कर नवनीत लिये ।
घुटुरुन चलत, रेणु तन मंडित, मुख दधि लेप किये ।।
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिये ।
लट लटकनि मनो मत्त मधुपगन मादक मदहि पिये ।।
कँठुला कंठ बज्र केहरि नख राजत रुचिर हिये ।
धन्य सूर एकै पल या सुख का सत कल्प जिये ।।

रहीम

ख़ानखाना अब्दुर रहीम का जन्म सन् १५५३ में हुआ था। ये अकबर महान् के संरक्षक बैरमखां खानखाना के पुत्र थे। ये अरबी, फारसी, संस्कृत और हिन्दी के विद्वान् थे। अकबर के दरबार में नवरत्नों में आपकी गिनती की जाती है।

रहीम परम उदार, दयालु, विचारवान् और नीतिज्ञ थे। आपके काव्य में नीति और ज्ञान-तत्त्व भरा पड़ा है। मुसलमान होते हुए भी आपने उपमा और रूपक भारतीय इतिहास-पुराणों से दिए हैं। आपकी भाषा सरल है और उसमें व्रज और अवधी का पुट है। आपकी उक्तियाँ बड़ी मार्मिक और प्रभावोत्पादक हैं।

आपकी रचनाएँ हैं : 'रहीम-सतसई', 'रासपंचाध्यायी', 'बरवै-नायिका-भेद' और 'मदनाष्टक'।

दोहे

जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत की सोय।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय ॥१॥

जे रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥२॥

कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
उहिं खाये बौराय जग, इहिं पाये बौराय ॥३॥

यों रहीम सुख होत है, उपकारी के संग।
बाँटनवारे के लगै, ज्यों मेंहदी को रंग ॥४॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि गंग नाव भौ धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम ॥५॥

सब कोऊ सब सों करै, राम जुहारु सलाम।
हित रहीम तब जानिए, जा दिन अटकै काम ॥६॥

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥७॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, सम्पति सँचहिं सुजान ॥८॥

दीन सबन को लखत है दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय ॥९॥

रहिमन वे नर मरि चुके, जे कहुँ माँगन जाँहि !
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाँहि ॥१०॥

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहुरीत।
विपति कसौटी जे कसे, सोई साँचे मीत ॥११॥

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवारि ॥१२॥

अमी पियावत मान बिन, रहिमन मोहि न सुहाय।
प्रेम सहित मरिबौ भलौ, जो विष देय बुलाय ॥१३॥

बड़े बड़ाई ना करें, बड़े न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहे, लाख टका है मोल ॥१४॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करै किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथै न माखन होय ॥१५॥

वृन्द

कवि वृन्द का जन्म सन् १६६३ के लगभग मथुरा के आसपास हुआ था। आपकी शिक्षा काशी में हुई थी। बाद में, कृष्णगढ़ के महाराज मानसिंह ने इन्हें अपना दरबारी कवि बनाकर सम्मानित किया। ये आजीवन वहीं रहे।

कवि वृन्द की ख्याति विशेष रूप से नीति-काव्य के लिए है। प्रमुख रचना है—'वृन्द-सतसई'। इसमें सात सौ दोहे हैं। इनकी भाषा सरल-सुबोध है। कहावतों और मुहावरों का प्रयोग सुन्दर ढंग से हुआ है।

दोहे

स्वारथ के सब ही सगे, बिन स्वारथ कोउ नाहिं ।
जैसे पंछी सरस तरु, निरस भए उड़ि जाहिं ।। १ ।।

मान होत है गुनिन तें, गुन बिन मान न होइ ।
सुक सारी राखै सबै, काग न राखै कोइ ।। २ ।।

मूरख गुन समझै नहीं, तौ न गुनी में चूक ।
कहा भया दिन को बिभो, देखै जो न उलूक ।। ३ ।।

विद्या-धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन ।
बिना डुलाए ना मिलै, ज्यों पंखा को पौन ।। ४ ।।

भले बुरे सब एकसों, जौ लौं बोलत नाहिं ।
जान परत है काक पिक, ऋतु बसन्त के माहिं ।। ५ ।।

मधुर बचन तें जात मिट, उत्तम जन अभिमान ।
तनिक सीत जल सों मिटे, जैसे दूध उफान ।। ६ ।।

सरसुति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात ।
ज्यों खरचै त्यों-त्यों बढ़ै, बिन खरचै घटि जात ।। ७ ।।

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाय ।। ८ ।।

अपनी पहुँच बिचारि कै, करतब करिये दौर ।
तेते पाँव पसारिये, जेती लंबी सौर ।। ९ ।।

साँच झूठ निरनै करै नीतिनिपुनि जो होय ।
राजहंस[१] बिन को करै छीर नीर को दोय ।।१०।।

प्राचीन कविताओं के अर्थ

कबीर

१. फूलों में बसने वाली सुगन्धि की तरह तेरा स्वामी (ईश्वर) तेरे अन्दर ही है, पर इतने पर भी तू उसे बाहर ढूंढता भटक रहा है; जैसे कस्तूरी वाले हिरन को यह पता नहीं होता कि वह सुगन्धि उसकी नाभि से ही आ रही है और वह बाहर खोजता भटकता रहता है।

२. गुरु और ईश्वर दोनों सामने एक-साथ ही खड़े हैं। पहले किसके पैर छूऊँ? हे गुरु, तुम्हारी बलिहारी लूं क्योंकि इस ईश्वर को बताने वाले भी तो तुम्हीं हो।

३. जब 'मैं' गुरु को ढूँढ रहा था तो गुरु नहीं मिला, और अब 'गुरु' मिले तो 'मैं' खो गया। प्रेम की गली ही इतनी तंग है कि उसमें दोनों में से कोई एक ही पैठ सकता है।

४. छाज की तरह साधु अपने-आपको बनावे। जैसे छाज अन्न (सार) को अपने में रख भूसे को बाहर फेंक देता है।

५. गूँदते समय मिट्टी कुम्हार से कहती है—तुम मुझे क्या रौंद सकते हो! एक ऐसा भी दिन आने वाला है जब मैं तुम्हें रौंदकर अपने आप में मिला लूँगी।

६. माली को आते देखकर कलियाँ चीख-पुकार रही हैं—आज खिले हुए फूल माली चुन रहे हैं, कल हम भी फूलेंगी और हमें भी उसी तरह चुन लिया जाएगा जैसे ये फूल आज चुने जा रहे हैं।

७. जहाँ (जिसके हृदय में) दया है वहीं धर्म भी हो सकता है। और जहाँ (जिसके हृदय में) लोभ का वास होता है वहीं पाप है। जहाँ (जिसके हृदय में) क्रोध है, वहीं काल (विनाश) का वास है, जहाँ (जिसके हृदय में) क्षमा की भावना है वहीं आप (ईश्वर) का वास है।

८. हे स्वामी, मुझे उतना ही धन दीजिए जिससे मेरे परिवार का गुज़ारा चल जाए। मैं भी खाऊँ और साधुओं की भी सेवा कर सकूँ।

९. नाव में पानी घुस रहा हो, घर में धन-सम्पत्ति बढ़ रही हो—दोनों हालतों में सज्जन का यही काम है कि दोनों हाथ से उसे बाहर फेंके। (पानी कम होगा। धन दान में देने से पुण्य मिलेगा।)

१०. रूखा-सूखा खाना खाकर, और ठंडा पानी पीकर अपने में सन्तुष्ट रहो; दूसरे की घी से चुपड़ी रोटी से जी मत ललचाओ।

११. भगवान् जिसकी रक्षा करने वाला हो उसे कोई मार नहीं सकता। संसार उसका शत्रु भले ही हो जाए, पर उसका एक बाल तक नहीं टेढ़ा होगा।

१२. साधु से यह मत पूछिए कि तुम्हारी जाति क्या है। उसकी पहचान तो उसके ज्ञान से की जानी चाहिए। क्योंकि म्यान की अच्छाई-बुराई से कोई मतलब नहीं, कीमत उसके अन्दर वाली तलवार की लगाओ।

१३. संसार में जब मैं बुराई ढूँढ़ने चला तो बुरा कोई भी नहीं दिखा। परन्तु जब अपने हृदय को टटोला सब से बुरा मैंने अपने आपको ही पाया।

१४. कामी, क्रोधी और लालची से भक्ति नहीं हो सकती। भक्ति करने के लिए ऐसा बहादुर बनना पड़ता है जो जाति, वर्ण और कुल-धर्म की परवाह न करे।

१५. विपत्ति में सभी ईश्वर का नाम लेते हैं, परन्तु अच्छे दिन आते ही वे नाम लेना भूल जाते हैं। अगर अच्छे दिन में भी यह नाम स्मरण रहे तो फिर दुःख आये ही क्यों ?

तुलसी

१. तुलसीदासजी कहते हैं—संतजन और हरे-हरे वृक्ष दूसरों के लिए ही फलते-फूलते हैं। लोग इन्हें पत्थर मारते हैं और ये उन्हें मीठे फल देते हैं।

२. तुलसीदासजी कहते हैं कि मुखिया खान-पान में मुँह जैसा होना चाहिए जो कि सारे अंगों का बुद्धिमत्ता से पालन करे।

३. तेजहीन पुरुष का अवश्य ही अपमान होता है। जैसे आग के बुझ जाने पर राख को हर कोई छू लेता है।

४. हाथी, घोड़े, गाएँ और कीमती रत्नों का खज़ाना अर्थात् सब प्रकार का धन, सन्तोष-रूपी धन के मिल जाने पर धूल के समान लगने लगता है।

५. तुलसीदास कहते हैं—मन में जब तक काम, क्रोध, मद और लोभ का वास है, तब तक पण्डित और मूर्ख दोनों एक जैसे हैं।

६. विश्वास के बिना भक्ति होना कठिन है और भक्ति के बिना भगवान् राम नहीं पसीजते। और राम की कृपा के बिना मनुष्य सपने में भी विश्राम (सुख) नहीं पा सकता।

७. तुलसीदासजी कहते हैं—जैसे समय पाकर वृक्ष फलते-फूलते हैं, वैसे ही गुण और दोष भी समय पाकर प्रकट होते हैं।

८. जो (अतिथि के) आने पर प्रसन्न नहीं होता और जिसकी आँखों में स्नेह की झलक नहीं दिखाई देती, तुलसीदासजी

कहते हैं कि वहाँ कभी नहीं जाना चाहिए चाहे सोने की वर्षा हो क्यों न हो।

९. तुलसीदासजी कहते हैं—यह शरीर खेत के समान है और (मनुष्य का) मन (खेती करने वाला) किसान है। पाप और पुण्य दो बीज हैं। जो जैसा बोता है, वैसा ही काटता है।

१०. तुलसीदास कहते हैं—दुनिया के साथ ३६ की तरह (जैसे ३ और ६ के अंक मिले हैं) अर्थात् विमुख होकर रहना चाहिए। और राम के चरणों में ६३ की तरह (आमने-सामने)। हृदय में विचार करके देख लो यही उत्तम मत है।

११. तुलसीजी कहते हैं—विपत्ति में विद्या, नम्रता, विवेक, साहस, अच्छे काम, सच्चाई व राम का भरोसा ही साथी होता है।

१२. भगवान् ने संसार में जड़-चेतन और गुण-दोष सभी कुछ बनाया है। किन्तु सन्त-जन केवल गुणों को ग्रहण करते हैं और दोषों को छोड़ देते हैं। जैसे पानी-मिले दूध से हंस केवल दूध को ग्रहण करता है और पानी को रहने देता है।

१३. राम नाम के सहारे के बिना परमार्थ की आस करना वैसा ही है, जैसा कि कोई मेघ से गिरती बूँदों (जलधारा) के सहारे आकाश पर चढ़ना चाहे।

१४. तुलसीजी कहते हैं—जैसी होनी होती है, वैसे ही सहायक कारण भी मिल जाते हैं। वह होनी स्वयं उसके पास न आकर उसे ही अपने पास ले जाती है।

१५. तुलसीदासजी कहते हैं कि कल्प वृक्ष का चित्र बनाकर, उससे हज़ार अनुनय-विनय करने पर भी धन नहीं मिल सकता। इसपर विचार करके देखो।

सूरदास

१. मैं (उन) भगवान् के चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से पंगु (लंगड़ा-लूला) भी पहाड़ को लाँघ सकता है और अंधे को भी सब कुछ दिखाई देने लगता है, बहरा (उनकी कृपा से) सुनने लगता है और गूँगा बोलने लगता है। और अति निर्धन भी सिर पर छत्र धारण करके चलता है। सूरदासजी कहते हैं—हे करुणामय स्वामी ! मैं बारम्बार तुम्हारे चरणों की वन्दना करता हूँ।

२. मैया ! मेरी शिखा कब बढ़ेगी ? मुझे दूध पीते कितने ही दिन हो गए पर यह तो अब भी छोटी ही है। तू तो कहती थी कि बलदेव की शिखा के समान यह भी लम्बी और मोटी हो जाएगी ? कंघी करते, गूँथते, नहलाते, धोते, पोंछते यह नागिन की तरह लहकदार तथा लम्बी होकर ज़मीन चूमने लगेगी और इसीलिए कच्चा दूध पचा-पचाकर पिला रही हो और रोटी-मक्खन नहीं देती। सूरदास कहते हैं ऐसी लीला दिखाने वाले कृष्ण और बलदेव की यह जोड़ी चिरंजीव हो।

३. हाथ में मक्खन लिए श्रीकृष्ण शोभित हो रहे हैं। घुटनों के बल चल रहे हैं, शरीर में धूल अँट गई है। मुँह में दही लिपा हुआ है। बालों की एक लट आँख पर ऐसे लटक रही है मानो भौंरों का समूह (कमल-दल पर) मस्त होकर मधु पी रहा

हो। गले में कंठी तथा हृदय पर सिंह-नख झूल रहा है। सूरदास कहते हैं ऐसा सुख एक पल के लिए भी लेकर सात कल्प तक जिया जा सकता है।

रहीम

१. रहीमजी कहते हैं कि जो गति दीये की होती है वही गति कुल में मूर्ख पुत्र की होती है। जिस प्रकार दीया जलाने पर (बारे) प्रकाश करता है उसी प्रकार पुत्र ,के उत्पन्न होने पर (बारे) प्रसन्नता होती है। और दीया बुझाने पर (बढ़े) अँधेरा हो जाता है तथा मूर्ख पुत्र बड़ा होने पर (बढ़े) दु:खदायी. होता है।

२. रहीमजी कहते हैं कि जो उत्तम स्वभाव वाले हैं, बुरों का संग उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। जिस प्रकार चन्दन-वृक्ष पर साँप सदा लिपटे रहते हैं परन्तु उसमें विष का लेशमात्र भी नहीं होता।

३. कनक (सोने) में कनक (धतूरे) से अधिक नशा है। धतूरे के तो खाने से नशा हो जाता है और सोने के प्राप्त हो जाने पर ही नशा हो जाता है।

४. रहीमजी कहते हैं कि उपकारी का संग करने से उसी प्रकार सदा सुख मिलता है जिस प्रकार मेंहदी बाँटने वाले के हाथ में मेंहदी का रंग लग ,जाता है।

५. गंगा के समुद्र में मिल जाने से समुद्र को तो कोई महत्त्व प्राप्त नहीं हुआ और गंगा का नाम समाप्त हो गया। रहीम जी कहते हैं कि दूसरे के घर जाने पर किसकी महत्ता नहीं घटती ?—अर्थात् सब की घट जाती है।

६. सब मनुष्य सब से राम-राम और सलाम प्रायः करते ही करते हैं। रहीमजी कहते हैं कि हित-अनहित की पहचान तो तब होती है जब एक को दूसरे से काम पड़ता है।

७. एक ही स्वाति नक्षत्र के (उदय में गिरी हुई) बूँद के—केले, सीप और साँप के मुख में—गिरने पर (तीन स्थानों में) तीन गुण हो जाते हैं (केले में गिरने पर वह कपूर बन जाती है, सीप में गिरने पर मोती और साँप के मुख में गिरने पर मणि बन जाती है)। इसी प्रकार मनुष्य जिस प्रकार की संगति में बैठता है वैसा ही उसका स्वभाव हो जाता है।

८. वृक्ष स्वयं फल नहीं खाते और तालाब स्वयं जल नहीं पीते। रहीमजी कहते हैं इसी प्रकार सज्जन दूसरों के लिए ही धन इकट्ठा करते हैं।

९. गरीब मनुष्य सब को देखता है पर गरीब को कोई नहीं देखता। रहीमजी कहते हैं कि जो दीन की ओर देखता है वही दीनबन्धु के समान होता है।

१०. रहीमजी कहते हैं कि वे मनुष्य मर चुके हैं जो कहीं माँगने जाते हैं। पर उनसे पहले वे मर गए हैं जिनके मुख से 'न' निकलती है।

११. रहीमजी कहते हैं कि सुख के समय अनेक प्रकार से अनेक मित्र बन जाते हैं। किन्तु जो विपत्ति में काम आते हैं वे ही सच्चे मित्र हैं।

१२. रहीमजी कहते हैं कि बड़ों को देखकर छोटों की उपेक्षा नहीं कर देनी चाहिए। क्योंकि जहाँ सुई ने काम करना है वहाँ तलवार क्या कर सकती है?

१३. रहीमजी कहते हैं कि मान के बिना मुझे अमृत भी पिलाया जाए तो वह मुझे अच्छा नहीं लगता और प्रेम के साथ यदि विष भी पिलाया जाए तो उसे पीकर मैं मरना अच्छा समझता हूँ।

१४. महापुरुष अपनी प्रशंसा नहीं करते और न बढ़-चढ़कर बातें करते हैं। रहीमजी कहते हैं कि हीरा कब कहता है कि मेरा लाख टके मोल है।

१५. रहीमजी कहते हैं कि जिस प्रकार फटे हुए दूध को मथने से मक्खन नहीं मिलता उसी प्रकार बिगड़ी हुई बात लाख यत्न करने पर भी नहीं बनती।

वृन्द

१. सभी मतलब के ही यार होते हैं। स्वार्थ न हो तो कोई अपना नहीं बनता, जिस प्रकार सरस (रस वाला, फल वाला) पेड़ के नीरस (रसहीन, फलहीन) होने पर पंछी वहाँ से उड़ जाता है।

२. (व्यक्ति में) गुण हों तो मान होता है। गुणों के बिना मान नहीं होता। तोते और मैना को सभी पालते हैं किन्तु कौए को कोई नहीं पालता।

३. मूर्ख लोग गुण को नहीं समझ पाते तो गुणी में कोई कमी नहीं हो जाती। उल्लू यदि दिन को नहीं देख सकता तो इसमें दिन का तो कुछ नहीं बिगड़ता।

४. जैसे पंखे को हिलाए बिना हवा नहीं आती वैसे ही उद्यम (पुरुषार्थ) के बिना कौन विद्या रूपी धन को पा सकता है? अर्थात् कोई नहीं पा सकता।

५. जब तक कोई बोलता नहीं तब तक भले और बुरे सब एक जैसे लगते हैं। (जैसे) कौए और कोयल की पहचान तो वसन्त ऋतु में होती है। [भावार्थ यह है कि कौए और कोयल दोनों का रंग काला होता है। दोनों एक जैसे दीखते हैं। किन्तु जब वसन्त ऋतु आती है तो कोयल गाती है—तभी उसके गुण-विशेष का ज्ञान होता है। इसी प्रकार जब तक मनुष्य नहीं बोलते तब तक उनकी अच्छाई-बुराई का ज्ञान नहीं हो सकता।]

६. सज्जन पुरुषों का अभिमान (हठ) मीठे वचनों से मिट जाता है। जैसे (कड़ाही में गर्म हो रहे) दूध का उफान थोड़े से शीतल जल से बैठ जाता है।

७. सरस्वती अर्थात् विद्या के भण्डार की बात बड़ी निराली है। इसको (विद्या को) जितना-जितना खर्च (प्रयोग) किया जाय, यह उतनी-उतनी बढ़ती है। यदि इसका प्रयोग न करें तो घट जाती है। [पैसा खरचने से घट जाता है, किन्तु विद्या का जितना व्यवहार किया जाता है यह उतनी ही बढ़ती है।]

८. सभी सबल (समर्थ) की सहायता करते हैं। निर्बल का कोई सहायक नहीं होता। वायु आग को तो तेज़ कर देती है किन्तु वही दीपक को बुझा देती है।

९. अपनी पहुँच का विचार करके (अपनी सामर्थ्य देखकर ही) कदम उठाना चाहिए। जितनी लम्बी चादर हो उतने ही पाँव पसारने चाहिएँ। [भाव यह है कि शक्ति से अधिक व्यय करने पर मनुष्य जीवन-भर पछताता है, अतः अपनी स्थिति देखकर ही काम करना चाहिए।]

१०. नीति में कुशल व्यक्ति ही सच और झूठ का निर्णय कर सकते हैं। (जैसे) राजहंस दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है वैसे और कौन कर सकता है, अर्थात् कोई नहीं।
[कहते हैं, राजहंस के सामने दूध और पानी मिलाकर रख दें तो वह दूध अलग और पानी अलग कर देता है। इसी प्रकार नीतिवान् व्यक्ति ही झूठ-सच की परख कर सकता है।]

* * *